पांचवां अध्याय

रिपोर्ताज

काव्य और कथा की तुलना में रिपोर्ताज हिन्दी की अपेक्षाकृत कम प्रचलित विधा है। गोष्ठियों और परिसंवादों में रिपोर्ताज आज भी उपेक्षा का विषय बना हुआ है। हिंदी का आलोचक आज भी इस विधा को गंभीरतापूर्वक नहीं लेता। हमारे आलोचकों को 'नयी कहानी' की 'लघुता' में 'सार्थकता' तो दिखती है, पर इस विधा की 'सार्थकता' नजर नहीं आती। 'रिपोर्ताज' उपेक्षा का विषय बना हुआ है—रचना से भी और आलोचना से भी। डॉ. प्रभाकर माचवे हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वान हैं, पर उनकी नजर में 'रिपोर्ताज' विशेष महत्व की विधा नहीं है। वे लिखते हैं – "व्यक्ति चित्र की भांति घटनाओं के विवरण, प्रवास या किसी बड़ी दुर्घटना, युद्ध, भूचाल, अकाल आदि के मनोरंजक ब्योरे या प्रचार की दृष्टि से लिखे जाने वाले व्यंग्यपूर्ण प्रसंग-चित्र – जिन्हं फ्रेंच में 'रिपोर्ताज' नाम दिया गया है, कहानीनुमा होते हुए भी कहनी नहीं होते। अज्ञेय का 'त्रिपुरी कांग्रेस' पर लेख, रांगेय राघव के बंगाल के अकाल पर 'तूफानों के बीच', अमृतलाल नागर की 'आदमी नहीं-नहीं', इलिया एहरेनबुर्ग या वासिली ग्रासमन जैसे रुसी रिपोर्ताज – लेखकों के युद्ध के नाम पर वर्णन आदि या उर्दू कहानी में कृशन चन्दर आदि द्वारा बहुत प्रयुक्त होने वाली शैली (हम वहशी हैं) इसी प्रकार की है। इसमें कहानी के तत्व अवश्य हैं, परंतु जैसे फोटोग्राफी की कला का पोस्टर के लिए उपयोग हो, वैसे 'रिपोर्ताज' कहानी का एक विशेष प्रकार का प्रचारात्मक प्रयोग है।"[1] प्रभाकर माचवे की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है कि रिपोर्ताज कोई बहुत महत्वपूर्ण विधा नहीं है। उसमें कहानी का तत्व तो है पर कहानी नहीं, उसमें सिर्फ 'कहानी का एक विशेष प्रकार का प्रचारात्मक प्रयोग है'। वरिष्ठ आलोचक देवराज उपाध्याय को भी रिपोर्ताज को साहित्यिक गरिमा प्रदान करने में हिचकिचाहट महसूस होती है –" 'रिपोर्ताज' एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसे साहितय के रूप में परिणत होने मं बहुत कठिनाई उपस्थित होती हैं। उसकी प्रथम वफादारी, यथार्थता, यथातथ्यता तथा चर्म-चक्षुओं से देखी जाने वाली घटनाओं और दृश्यों के प्रति है। वह पत्रकारिता का समानधर्मी है। कल्पना बेचारी तथ्यों पर सोने का

पानी फेरकर उसे चमत्कृत कर देने के लिए उड़ान भरती तो है, पर पृथ्वी का आकर्षण उसे नीचे खींच लेता है।"[2]

'रिपोर्ताज' शब्द 'फ्रेंच' भाषा से लिया गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोपिय साहित्य में इस विधा का जन्म हुआ। रिपोर्ताज को ठेठ हिंदी में 'रपट लिखना' भी कहते हैं। रिपोर्ताज में वास्तविक घटनाओं को भाषा एवं कला के माध्यम से पुनः सजीव किया जाता है। इसका सत्य से बहुत गहरा सरोकार होता है। वह प्रत्येक घटना का सजीव चित्र उपस्थित करता है। घटनाआं को सजीव चित्र देने में कल्पना का विशेष महत्व होता है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार —"किसी घटना की रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहा जाता है।"[3] इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं —"बिना कल्पना को अनुभव में बदले सफल रिपोर्ताज नहीं लिखे जा सकते और साथ ही अनुभव को कल्पना में पकाए बिना भी रिपोर्ताज का सफल लेखन नहीं हो सकता।"[4] रिपोर्ताज में कल्पना, बुद्धि और संवेदना का विशेष महत्व है।

हिन्दी में रिपोर्ताज लेखन की परम्परा 1940 के आस-पास शुरू हुई। माना जाता है कि हिन्दी का पहला रिपोर्ताज शिवदान सिंह चौहान ने 'लक्ष्मीपुर' नाम से लिखा था। जिसका प्रकाशन सुमित्रानंदन के संपादन में निकलने वाली 'रुपाभ' (मासिक) पत्रिका के दिसम्बर, 1938 के अंक में हुआ था। सन् 1941 ई. में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा था। इस आकाल की भीषण छाया को रांगेय राघव ने 1943-44 ई. के 'विशाल भारत' (मासिक पत्रिका) में रिपोर्ताज के माध्यम से प्रस्तुत किया। जो बाद में 1946 ई. में 'तूफानों के बीच' शीर्षक से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। सन् 1938 ई. से पूर्व भी हमें रिपोर्ताज के रूप प्रचलित मिलते हैं। जनवरी 1877 में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में 'दिल्ली दरबार दर्पण' नामक रिपोर्ताज लिखा था। इसमें दिल्ली दरबार के साथ-साथ, क्वीन विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी पदवी धारण का विशद वर्णन है। इसी क्रम में दूसरी रचना चंडी प्रसाद सिंह की है। 1886 ई. में इन्होंने 'युवराज की यात्रा' शीर्षक से रिपोर्ताज प्रकाशित करवाया। जो खड़ग विलास प्रेस, बांकेपुर से प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रिंस ऑफ वेल्स की भारत-यात्रा का वर्णन है। पर हिन्दी का पहला रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुर' को ही माना जाता है। वजह यह है कि भारतेन्दु तथा चंडीदास के रिपोर्ताज में प्रभावोत्पादकता कम है।

इसमें इतिहास की प्रधानता है, जबकि 'लक्ष्मीपुरा' में एक गांव के हलचल भरे जीवन का सजीव चित्र है।

'रिपोर्ताज' विधा को धर्मवीर भारती और 'धर्मयुग' पत्रिका से अधिक बल मिला। धर्मवीर भारती 1971 की बंगलादेश की युद्ध यात्रा को रिपोर्ताज में बांधकर 'युद्ध यात्रा' नाम से 1972 में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। शिवसागर मिश्र का रिपोर्ताज –'लड़ेंगे हजार साल' (1966 ई.) सन् 1965 ई. में लड़े गये भारत-पाक युद्ध को आधार बनाकर लिखा गया है। हिन्दी में इसके अतिरिक्त भगवतशरण उपाध्याय, राहुल सांकृत्यायन, प्रभाकर माचवे, रामकुमार, निर्मल वर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती, विष्णुकांत शास्त्री, प्रफुल्ल कुमार सिंह, कमलेश्वर, विवेकी राय आदि लेखकों ने भी अपनी लेखनी से इस विधा को समृद्ध किया है। पर हिन्दी में सबसे अधिक, जीवंत और दिलचस्प रिपोर्ताज 'रेणु' ने लिखे हैं।

8 नवम्बर, 1964 को 'धर्मयुग' पत्रिका में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'पुरानी कहानी : नया पाठ' शीर्षक से एक रिपोर्ताज प्रकाशित हुआ था। इस रिपार्ताज के साथ 'रेणु' का एक वक्तव्य भी छपा था – "...गत महायुद्ध ने चिकित्सा शास्त्र के चीर-फाड़ (शल्य-चिकित्सा) विभाग को पेनसिलिन दिया और साहित्य के कथा-विभाग को रिपोर्ताज !"[5] 'रेणु' के इस वक्तव्य से दो-तीन बातें स्पष्ट होती हैं - रिपोर्ताज कथा साहित्य का ही बदला हुआ रूप है, इसकी उत्पत्ति द्वितीय महायुद्ध के समय हुई, यानी रिपोर्ताज युद्ध की विभीषिका की देन है।

सन् 1954 ई. से पहले 'रेणु' ने विपुल मात्रा में रिपोर्ताज लिखे थे, पर उनमें से आज अधिकांश अनुपलब्ध हैं। 'रेणु' रचनावली के संपादक भारत यायावर इसकी सूची कुछ इस प्रकार देते हैं –" 'रेणु' का पहला महत्वपूर्ण रिपोर्ताज 'जै गंगा' है, जो साप्ताहिक 'जनता' में 1947 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी क्रम में, दूसरा महत्वपूर्ण रिपोर्ताज 'डामन कोसी' है, जो 'जनता' में 1948 ई. में प्रकाशित हुआ। 'रेणु' का तीसरा महत्वपूर्ण अनुपलब्ध रिपोर्ताज 'एक टू आस्ते-आस्ते' है, जिस पर अश्लीलता का आरोप लगाया गया था और तत्कालीन सोशलिस्ट पार्टी में लबी बहस चली थी। चौथा महत्वपूर्ण अनुपलब्ध रिपोर्ताज 'रामराज' है। नेपाली क्रांति के बाद 'रेणु' का सबसे लंबा रिपोर्ताज 'हिल रहा हिमालय' धारावाहिक रूप में 'जनता' में ही प्रकाशित

हुआ, जिसका पुनर्लेखन कर 'रेणु' ने बाद में 'नेपाली क्रांति कथा' के रूप में प्रकाशित करवाया। डालमियानगर में मजदूरों के आंदोलन पर 'घोड़े की टाप पर लोहे की रामधुन' नामक रिपोर्ताज 1950 ई. में प्रकाशित हुआ। 'रेणु' 1950-51 में अपने रिपोर्ताजों का संग्रह प्रकाशित करना चाहते थे, साथ ही 'हिल रहा हिमालय' को अलग पुस्तक-रूप में। पर अर्थाभाव के कारण उनका प्रकाशन नहीं हो सका। 1952 ई. के बाद वे 'मैला आंचल' के लेखन-प्रकाशन में लगे और ये रिपोर्ताज असंकलित रह गए। 'रेणु' बाद में इन्हें खोजते- तलाशते रहे, पर वे उन्हें उपलब्ध नहीं हो सके।"[6]

'रेणु' रिपोर्ताज विधा को उसकी चरम सीमा तक ले जाते हैं। वे जैसा चाहते हैं, वैसा ही लिखते हैं। और वे जैसा लिखते हैं, वैसे ही पाठक भी देखता है। उनके रिपोर्ताज 'रेणु' जैसे ही लगते हैं। रघुवीर सहाय के शब्दों में कहें तो –"वह जैसा सोचते थे वैसा बोलते थे और जैसा बोलते थे वैसा लिखते थे–और फिर जब उनको पढ़ो तो लगता था कि 'रेणु' बोल रहे हैं।"[7] 'रेणु' की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए वे आगे लिखते हैं–"उनके लेखन में अपूर्व वर्णन-शक्ति है और वह सिवाय उतनी ही अपूर्व पर्यवेक्षण शक्ति के और कहां से आ सकती है ? वह चारों ओर जो कुछ देखते हैं, उसके ब्योरे उनके लिए रमणीय हाते हैं, पर लिखने के लिए स्मृति में रखने योग्य व्यौरों का चुनाव करते समय वे निमर्मता से बहुत-से -व्यौरों को रद्द करते जाते होंगे, यह स्पष्ट है। यह दुर्लभ गुण उन्हें तमाम हिन्दी-लेखकों से ऊंचे स्थान पर ला बिठाता है जो व्यौरों को घटिया लोगों का रोजगार और उपदेश को अथवा दार्शनिकता को श्रेष्ठ साहित्यिक कर्म मानते हैं। 'रेणु' का देखना एक ही साथ बाहर और भीतर दोनों ओर होता है। यही उनके व्यौरों को अर्थ दे जाता है : अलग से अर्थ गढ़कर बनाने की जरूरत तो उन्हें होती ही नहीं, सही शब्दों से उलथा करके बताना भी उनकी शैली में आवश्यक हो जातता है।"[8] रघुवीर सहाय खुद एक सफल रिपोर्ताज लेखक हैं। 'रेणु' के संदर्भ में उनकी यह टिप्पणी 'रेणु' के महत्व को रेखांकित करती ही है, साथ ही रघुवीर सहाय की लेखकीय रूप की ईमानदारी को भी उजागर करती है।

'रेणु' का पहला रिपोर्ताज 'विदापद नाच' साप्ताहिक विश्वमित्र में 1945 ई. में प्रकाशित हुआ और अंतिम 'पटना-जलप्रलय' 1975 में, यानी रिपोर्ताज उनके

साथ शुरू से अंत तक जुड़ा रहा। वे लगभग 30 वर्षों के इतितहास की विविध घटनाओं को, भूली-बिसरी बातों को, विभिन्न परिस्थितियों को रिपोर्ताज में बांधते हैं। देश की आजादी के साथ जनता के सपने जुड़े हुए थे। सबकी आंखों में नयी सुबह की आशा थी। लेकिन वह सुनहली सुबह कभी नहीं आई, जिसकी आशा में करोड़ों भूखी, नंगी जनता पलके बिछाये थीं। आजादी के नाम पर उनहें ठगा गया। जनवरी 1950 के मासिक 'जनवाणी' (वाराणसी)पत्रिका में प्रकाशित **'नए सवेरे की आशा'** शीर्षक रिपोर्ताज में गरीबी, भूख, और शोषण को दिखाया गया है। साथ ही उन गरीब भूखी आँखों में आस्था और अदम्य साहस भी दिखता है। उन्हें लगता है कि वे पुनः स्थितियों को बदल देंगे, लेकिन अब यह उतना आसान नहीं है, क्योंकि इस बार की लड़ाई बाहरी लोगों से नहीं बल्कि अपने ही भाइयों से है।

'नए सेवेरे की आशा' रिपोर्ताज में 'रेणु' 25 नवम्बर, 1949 को पटना में हुए ऐतिहासिक किसान-सम्मेलन का आँखों देखा हाल बयान करते हैं। इस सम्मेलन में बिहार के लगभग सभी किसान आये थे, जगह -जगह से किसानी जत्थे पहुंचे थे। बिहार के पूर्णिया जिले के जत्थे का चित्र 'रेणु' इस रिपोर्ताज में उकेरते हैं। पूर्णिया जिले के जत्थे का नेतृत्व ज्ञानचंद करता है। गांव में जन्म लेने और किसान का बेटा होने के बावजूद भी वह धान की किस्म, नाम एवं जातियों को नहीं जानता,-पहचानतता, लेकिन किसानों का प्रतिनिधित्व करने के लिए पटना से आया है। 'रेणु' यह बताना नहीं भूलते कि ज्ञानचंद अपनी इच्छा से नहीं आया है, वह इस बात को भलीभांति जानता है कि वह धानों की किस्म नहीं पहचानता, लेकिन पार्टी की नजर में वह किसान है किसान का बेटा होना ही पार्टी के लिए काफी है। और उसे जबरदस्ती पूर्णिया भेज दिया जाता है, किसानों का प्रतिनिधित्व करने के लिए।

आजादी के साथ लोगों को यह आशा थी कि उनके बच्चे लिख-पढ़ जायेंगे। पर वास्तविक स्थिति कुछ और निकली, उन्हें लिखने पढ़ने के लिए किताब और सादे पन्ने तक मुहैया नहीं हो पाये, पर पार्टी के प्रचार के लिए कागज जरूर छपवाया गया। आजाद और निरक्षर भारत को शिक्षा की जरूरत थी न कि पार्टी प्रचार की ! आजाद भारत में चांदनी की रोशनी फीकी लगती है, बच्चे नंगे तथा माल-जाल मरियल से दिखते हैं। फिर भी गवई किसानों ने हिम्मत नहीं हारी है। वे कहते हैं –

"मिला नहीं है अन्न पेट भर

नहीं देह पर साबित बस्तर

बेदखली अब भी जारी है ...आगे कदम बढ़ाओ ! "[9]

भूख, गरीबी, बदहाली और जोर-जबरदस्ती आजाद भारत का यथार्थ है। गरीब, भूख तथा नंगे लोगों ने देश को आजादी दिलवायी तथा आजादी ने उन्हें तोहफे के रूप में पुनः गरीबी, भूख तथा धोखाधड़ी दी। गुलाम भारत में भी वह अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे और आज आजाद भारत में भी वे अपने अधिकारों की मांग कर रहे हैं। बदला कुछ भी नहीं है, सिवाय कुछ चेहरों के। चेहरे हमेशा से बदलती रहती हैं पर उनकी स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आता।

'नए सबेरे की आशा' में 'रेणु' एक तरफ यह दिखाते हैं कि गांव की गलियों में गंदगी फैली हुई है, लोग वस्त्र के अभाव में कड़ाके की सर्दी से लड़ रहे हैं और दूसरी तरफ गांव में ही एक जमींदार वर्ग है, दादा मोसाय, उनके मकान नए ढंग से बनवाए गये हैं, कमरे सजे हुए हैं, अंदर ठंड का नामों निशान नहीं है, चाय की गरम-गरम प्यालियां चल रही हैं और दीवार पर अधनंगी शकुतला की तस्वीर टंगी हुई है। चारों तरफ सुरुचि टपक रही है। महल के बाहर किसान, किसान मार्च की तैयारी कर रहे हैं और महल के सुविधा सम्पन्न व्यक्ति उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना कर रहे हैं। ज्ञानचंद को इस सुरुचि सम्पन्न वातावरण में भी 'मार्चिग-गीत' सुनने की इच्छा हो रही है—

"उर्ध्वे गगने बाजे बादल, निम्ने उतला धरणींतल।

अरुण प्रातेर तरुण दल, चल रे चल रे चल !! "[9] (नजरुल इस्लाम)

'रेणु' "करोड़ों-करोड़ शोषित, पीड़ित, मेहनतकशों की भूखी अतड़ियों, सूखी हड्डियों, खाली दिमाग और निराश दिल में हरकत पैदा करने की, गति लाने की "[11] कोशिश करते हैं। किसान मार्च उनके लिए नई उम्मीद है।

चुन्नीदासजी सन् 1930 ई. से लेकर 1942 तक लगभग 14 बार जेल हो आए थे। गांधी की आंधी में इस भोले किसान की सारी जमीन नीलाम हो गई। बच्चे देश की बली चढ़ गये और बीवी मर गई। चुन्नीदासजी ने प्रतिज्ञा कर रखी थी – जब तक सुराज न होगा, 'जटा और दढ़ी' नहीं कटाएंगे। सो '15 अगस्त' को साधु का धरम भ्रष्ट होते-होते बच गया, प्रतिज्ञा टूटते-टूटते रह गई। दुहाई गांधी बाबा, जमीन पर जोतनेवालों का हक नहीं, गरीबों के पेट में अन्न नहीं, देह पर बस्तर नहीं। लोगों ने हल्ला मचाया कि सुराज हो गया। दुहाई गांधी बाबा।"[12] आजादी ने चुन्नीदास जैसे सैकड़ों स्वतंत्रता सेनानियों को गरीबी और भूख दी। पंडित जवाहरलाल नेहरु के शासन काल में ही यह सब हो रहा था। किसानों को भर पेट भोजन के लिए आंदोलन करना पड़ रहा था। लोग गांव छोड़ शहर की तरफ भाग रहे थे और शहर उन्हें कुछ पैसों के रूप में गुलामी सिखाता जा रहा है। उसके तेज दिमाग को कुंद कर रहा था। चुन्नीदास कांग्रेस सरकार और उसके प्रतिनिधियों की सच्चाई को उजागर करते हुए कहते हैं –

"ब्योधा जाल पसारा रे हिरणा, ब्योधा जाल पसारा।

झूठ सुराज के फंद रचावल, लंबी-लंबी बतिया के चारा

मुंह पर गांधीजी के नाम बिराजे, बगल में रखलबा दुधारा

रे हिरणा... "[13]

ब्याध कांग्रेसी हैं, जो जाल बिछा चुके हैं और हिरण देश की भोली भाली निरीह जनता है, जो उसमें फंसती जा रही है। ये मुंह से गांधी का नाम उच्चाते हैं और मौका मिलते ही गला भी काटते हैं। कांग्रेस सरकार ने जनता के साथ विश्वासघात

किया। जनता उसके द्वारा बिछाये जाल को देख तो लेती है, पर उससे उबर नहीं पाती, उसकी नियति उस जाल में फंसना ही है। चुन्नीदास आगे एक आल्हा जोड़ते हैं –

"सुमरि कराली मां काली को, गांधीजी के करि जयकार
पकड़ चोटिया सब चोट्टन को, तब गद्दी से देहु उतार
बेइमानों का राज खतम कर चटपट बने अपन सरकार
लटपट सटपट सेठ महाजन, छटपट करे जालिम जमींदार
झटपट भागे दुख रे दरिदवा मचे देश में जयकार ... "[14]

13 नवम्बर, 1949 की भोर 3 बजे औराही, परानपुर, लहसनगंज, मिल्की, सरसी के 550 किसानों के 5 जत्थे को ज्ञानचंद प्रतिनिधित्व करता है। 550 किसान "नए जहां की नीव डालने "[15] चल पड़ते हैं। 550 लाल झंडिया तथा 550 बेकरार आवाजें आसमान को हिलाते हुए चलती हैं। पूर्णिया से जत्था रानीगंज हाट पहुंचता है, जहां की स्थिति का जिक्र 'रेणु' कुछ इस तरह से करते हैं –"यहां पर एक कांग्रेसी चीनी की चोरबाजारी करते हुए पकड़ा गया है। दफा 40 के मुकदमे में थाना कांग्रेस के मंत्री ने जमींदारों के पक्ष में गवाही दी।...एक कांग्रेसी गांधी स्मारक फंड का साढ़े सात हजार रुपया खा गया है।...सरकारी दफ्तरों में, कचहरियों में घूसखोरी की हद हो रही है।... "[16] किसानों के जत्थे को देख वहां की जनता की आंखों में 'नए सवेरे की आशा' झलकती है। वहां से जत्थे में पांच लोग और शामिल होते हैं। ये सभी "किसान मजदूर राज कायम करने की"[17] इच्छा लिए आगे बढ़ते हैं।

मुरलीगंज के लड़कियों और औरतों में कोई फर्क नहीं दिखता। रेणु लिखते हैं –"गालों में गड्ढे, छातियों में सिलवटें पड़ी हुईं। ये लड़कियां कभी जवान नहीं होती

हैं। लड़किया और फिर एकदम मां बन जाती हैं। जवानी क्या है, रस क्या है, उन्हें इन बातों की समझ नहीं।"[18] यह भारतीय यथार्थ है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। इन लड़कियों की अबोध आंखें इन किसानों को शुभकामनाएं देती हैं –"अंधेरे में हजारों आंखें चमक रही थी। उन आंखों में किसान-मजदूर राज, असली सुराज की भूख स्पष्ट "[19] रूप से दिख रही थी। 550से 605 किसानों के जत्थे। उनका नारा था –"मांग रहा है हिंदोस्तान , रोटी-कपड़ा और मकान। "[20] इनकी इच्छाएं सीमित हैं। "जूठे पतलों पर जीनेवाला, भूखा, गुदड़ी से लाज ढंकनेवाला, नंगा; फुटपाथ पर और खुले आसमान के नीचे सोनेवाला, बेघर का हिंदोस्तान जा रहा है। तेज-तेज कदमों से बढ़ता हुआ"[21] जा रहा है।

सन् 1942 के बाद यह सबसे बड़ा जन आंदोलन था। लगभग 50 हजार जनता ने एक साथ दुहराया था "हमारे नेता जयप्रकाश।"[22] किसान मार्च के संबंध में लोहिया की टिप्पणी थी–"लड़ाई का पहला मोर्चा फतह कर लिया गया।"[23] आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा था –"यह किसान-मार्च उस आंदोलन का प्रारंभ है जो नई जिंदगी का रास्ता प्रशस्त बनाएगा।"[24] किसान मार्च का आज भी ऐतिहासिक महत्व है।

युद्ध पर 'रेणु' का सबसे लम्बा रिपोर्ताज **'नेपाली क्रांति-कथा'** है। इसमें प्रजातंत्र की स्थापना के लिए राणाशाही के खिलाफ नेपाल में 1950 में हुए सशस्त संघर्ष का वर्णन है। इस कथा के माध्यम से लेखक नेपाली जन-जीवन के सामाजिक और राजनीतिक जीवन का यथार्थ चित्र खींचता है।

"डुबाया उसने कश्ती को
जिसे हम नाखुदा समझे।..."[25]

उपरोक्त पंक्तित **'हड्डियों का पुल'** रिपोर्ताज का है। यह रिपोर्ताज 17 सितम्बर 1950 को 'जनता' में प्रकाशित हुआ था। 'हड्डियों का पुल' शीर्षक थोड़ा चकित करता है। 'हावड़ा का पुल' या 'पटना का पुल' होता तो एक बात भी समझ में आती। 'हड्डियों का पुल' का रहस्य क्या है, वह 'रेणु' के शब्दों में –"सारे जिले

की धरती पर हड्डियां बिखर रही हैं। आसमान में गिद्दों का दल चक्कर मार रहा है, चील झपट्टे मार रहे हैं, कुत्ते, गीदड़ों और दम तोड़ते इंसानों में छीना-झपटी हो रही है।...हवा में लाशों की सड़ांध फैल रही है।...इन बिखरी हुई हड्डियों को बटोरकर काशी डैम...नहीं...कम-से-कम कोशी पर एक विशाल पुल तैयार किया जा सकता है।...हमारी सरकार के पुनर्निर्माण विभाग का, पूंजीवादी समाज के 'इंजीनियरिंग विभाग' का नया नमूना...ताजमहल की तरह अद्वितीय और दर्शनीय होगा वह पुल।"[26] यहां 'रेणु' पूर्णिया-सहरसा में अन्न संकट से उत्पन्न आकाल में मरे हुए लोगों के हड्डियों की बात करते हैं।

सन् 47 के बाद आकाल में मरने वाले लोग सिर्फ पूर्णिया या सहरसा में ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारत में हैं। ऐसा नहीं था कि देश में अन्न की कमी हो गयी थी या फसल नहीं होता था। बल्कि यथार्थ स्थिति यह है कि अन्न रेलगाड़ी से बाहर भेजे जाते हैं। मधुवन का एक नौजवान कहता है – "गाड़ी से हम लोगों के मुलुक का अन्न बाहर गया है। यह गाड़ी ही सारे फसाद की जड़ है।"[27] 'सारुख' का भी मानना है कि –"साला रेल नहीं होता तो अपने मुलुक का चावल, धान, मकई दूसरा मुलुक जाता।"[28] रेल के संदर्भ में गांधीजी के यही विचार थे। वे चाहते थे कि हर जगह का अन्न वहां के संकट को दूर करे, आसानी से कम दामों पर सबकी जरूरत पूरी हो सके। संभवतः इसीलिए महात्मा गांधी रेल के पक्षधर कभी नहीं रहें। साथ ही यह सच्चाई भी है कि स्वाधीनता आंदोलन के समय रेल से हमें भरपूर सहायता मिली, पर आजादी के बाद रेल गरीबों के लिए 'राक्षसी' के रूप में ही आई।

पूर्णिया की मटमैली धरती और मटमैले आसमान के नीचे, मटमैले चेहरे "निराशा की सर्द आहों और उम्मीद की गर्म सांसों"[29] से भूख का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ रहे थे, और भूख 'मौत का नेतृत्व' कर रही थी। मौत की तलाश में वे अपने गांव एवं 'डीह' को छोड़कर जा रहे थे। "धरती की छाती चीरकर, पताल से अन्न निकालने वालों को आज अन्न नहीं मिल रहा"[30] उन्हें लगता है कि –

"मरना भलो विदेश में

जहां न अपना कोय

काया खाए कूकरा ... "[31]

बीवी और बच्चों के भूखें चेहरों को याद कर वह परदेश में भूखों मरना स्वीकार करते हैं। बीवी की मुस्कुराहट और बच्चों की तोतली बोलियों को बचाएं रखने के लिए वे अपनों से दूर होते हैं। अपनों को थोड़ी-सी खुशी देने की कोशिश में खुद तो मरते ही हैं, पीछे उनके लिए भी मौत छोड़ जाते हैं।

लेकिन भारतीय सरकार इस मौत से बेखबर रहती है। लोगों को मौत से बचाने की बाजाए उन्हें जेलों में ठूस रही थी। सरकार मौत और आकाल की खबर को चबा जाती है। सारा गांव जिंदा लोगों का लाश था। अंग्रेजों के समय में लोग अंग्रेज और पुलिस से डरा करते थे, आजादी के बाद खासकर भारतीय स्त्री इन सफेद-पोश लोगों से डरती है। जो मुट्ठीभर मकई के दानों के लिए उसके शरीर को जानवरों की तरह रौद डालते हैं। कुरसाहा बाजार का सेठ और सूर्यवंशी बाबू सफेद कपड़े एवं कोर्ट-पैंट के नीचे एकदम 'बेदर्द एवं वहशी' दिखता है। सारे प्रांत की जनता भूख से तड़प-तड़प कर मर रही थी और नेहरु डनलप के गद्दे पर आराम की निद्रा फरमा रहे थे। सरकार सच्चाई को झूठ की चादर से ढक देती है। सच्चाई का गला घोट दिया जाता है। "पटना के पत्रकारों की टोली मुंह फाड़कर देखती है, कान खोलकर सुनती है और अवाक् रह जाती है।"[31] केन्द्रीय खाद्य मंत्री महोदय सारी सच्चाई को झुठला देते हैं। गांधीजी की 'सत्य-अहिंसा' और 'रामराज्य' को वे रौंद डालते हैं। सरकार का कहना था – "आकाल की बातें मत करो। मौतें हुई है मत कहो।"[33] चारों तरफ अन्न ही अन्न है। यह आजाद भारत की नेहरु शासन की सबसे बड़ी सच्चाई है, जिसे 'रेणु' बखूबी चित्रित करते हैं। 'नए सवेरे की आशा' शीर्षक रिपोर्ताज में भी 'रेणु' नेहरु शासन की एक और सच्चाई को उजागर करते हैं। नेहरु सरकार कहती है– "...हम गद्दी नहीं छोड़ेंगे। गांधीजी का नाम लो, सुबह-सुबह क्या रोटी-रोटी की रट लगा रखी है तुमने ? रोटी के लिए तो कुत्ते लड़ते हैं। नेहरुजी की बातें सुनो – टबों में खेती करो, गमलों में अन्न उपजाओ, शकरकंद खाओ...। बेदखली बंद करने की मांग मत करो। जमींदारों को मुआवजा नहीं दोगे ? सरदार पटेल ने कहा था, याद

नहीं—यह डकैती है। जाओ, रामधुन गाओ। कपड़े की क्या जरूरत है, भस्म लगाओ। हमारी संस्कृति, भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति वल्कल और भस्म, राख...। हम गद्दी नहीं छोड़ेंगे...। "[34] आजादी के बाद बदलते हुए भारतीय नेताओं की यह सच्ची तस्वीर है। उनका वर्ग बदल गया था और चरित्र बदल रहा था। रावी के तट पर पूर्ण स्वतंत्रता का संकल्प लेने वाले नेहरु, प्रधानमंत्री बनने के बाद गमले और टबों की बातें कर रहे थे! गांधी के प्रतिनिधि का चरित्र बदल चुका था। उसे गद्दी प्रिय थी, जनता नहीं।

'भूमिदर्शन की भूमिका' शीर्षक रिपोर्ताज सन् 1966 ई. में दक्षिण बिहार में पड़े सूखे से संबंधित है। यह रिपोर्ताज 6 टुकड़ों में 9 दिसम्बर 1966 से लेकर 13 जनवरी 1967 तक 'दिनमान' पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। 'कोख जली धरती' का दर्शन करने 'रेणु' अज्ञेय के साथ गया, नवादा, मुंगेर, बिहारशरीफ और अंत में पलामू जाते हैं।

दक्षिण बिहार में आकाल का प्रकोप ऐसा पड़ा कि होटलों का आकाल पड़ गया। होटलों के आकाल का रहस्य होटल मैनेजर समझाता है— "तंदूरी क्या, कोई भी चिकन नहीं। डेढ़ सौ मुर्गियों के आर्डर तो रोज 'उधर' से यानी बाहर से मिलते हैं...प्लीज वेट टिल ट्वेटी फिक्थ।"[35] इन होटलों में — "रोज दिल्ली अर्थात केन्द्र से कोई-न-कोई 'अन्नदाता' उड़कर आता है 'ड्राउट' देखने। (छत्तर का मेला हो गया यह ड्राउट!) "[36] हमारे अन्नदाताओं के लिए आकाल मनोरंजन का साधन है। अखबारों में इस बात का बार-बार खुलासा किया जाता है कि — "राजधानी में, शहरों में दीपावलियां सजती हैं। पटाखे फूटते हैं, फुलझड़ियां छूटती हैं।...उधर, गया के गांवों में, मुंगेर के दक्षिणी हिस्से में, पलामू और हजारीबाग की पहाड़ियों और जंगलों की धरती की छातियां दरकती हैं, पानी पाताल की ओर खिसकता जा रहा है। आदमी भूख से ऐंठ-ऐंठकर मरने लगते हैं।"[37] सूखे में जनता जल के अभाव को झेल रही थी और हमारे प्रतिनिधि 'व्हिस्की और स्काच' के अभाव को। आजादी के दो दशकों के अंदर की यह सच्चाई है। 'रेणु' का यह रिपोर्ताज नागार्जुन की चर्चित कविता 'अकाल और उसके बाद' की याद दिला देता है—

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की हालत रही शिकस्त ।"[38]

1952 के इस अकाल से भीषण अकाल था 1966 का। नागार्जुन के अकाल में कई दिनों तक ही चूल्हा, चक्की, कुतिया, छिपकली और चूहों की हालत सिशक्त रहती है। 'कई दिनों के बाद' घर में दाने भी आते हैं और आंगन में धुआं भी उठता है। लेकिन 'रेणु' के अकाल में आशा की कोई चमक नहीं दिखती। सूखे धरती की तरह लोगों का हृदय भी सूखता जा रहा था। कोसला गांव में सात दिन की मां 'खेसारी' खाकर रहती है और हवेली के मालिक के घर सत्यनारायण भगवान की पूजा में पूड़ी-बुंदिया और जलेबी की धूम मची हुई है। जिस अनाज को किसान अपनी हड्डी गला-गला कर पैदा करता है, आज वही अनाज उसके लिए नहीं है। धरती की छाती चीर कर अनाज पैदा करने वाला किसान आज अपनी मां, पत्नी, बहन और बेटी की फटी छातियों को देखता है। अनाज मांगने पर मालिक कहता है – "चोरी में पकड़ा देगा। डकैती में फंसा देगा। जेहल दे देगा।"[39] कुछ दिनों बाद इस गांव में अन्न नहीं आयेगा, सात दिन की मां नहीं रहेगी, उसका बच्चा नहीं रहेगा और शायद कोसला गांव भी न रहे।

नवादा का एस.डी.ओ. जनाब अब्दुल खैर का अकाल से कुछ लेना-देना नहीं है। अज्ञेय और 'रेणु' को वह 'रिलीफ' देने वाला समझता है। कहता है – "मैंने समझा कि आप लोग कोई रिलीफ देने आए हैं।... खैर ! तो, महाशय, रिलीफ यानी 'सहाये का काम देखने के लिए तो ...और हां, 'रिलीफ' का क्या मतलब समझते हैं, आप ? सहायता ? जी नहीं ! गलत ! रिलीफ का सही माने है 'स-हा-य'!... समझा ? "[40] यहां 'रिलीफ' शब्द का अर्थ बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री कृष्णबल्लभ सहाय से है। एक ही शब्द में 'रेणु' राजनीतिज्ञों और सरकारी कर्मचारियों के चेहरों को उजागर कर देते हैं। एस.डी.ओ. दैनिक आकड़ा भी गलत बताता है। सरकार की

तरफ से लगातार यह घोषणा की जाती है कि लोग भूख से मर नहीं रहे हैं। जबकि – "...24 जुलाई, 1966 को सुखाड़ी महतो ने भूख-प्यास से डाल्टनगंज में दम तोड़कर भुखमरी की घोषणा कर दी। 26 जुलाई को सुखदयाली भूइयां। 27 को जित्तन भूइयां।...मन्नू मांझी की औरत। एक औरत तीन बच्चों के साथ कूप में गिरकर मर गई। एक अज्ञात व्यक्ति...एक औरत...एक बच्चा...!! "[41] लेकिन सरकार का कहना है कि अकाल की समस्या उतनी भीषण नहीं है जितना हल्ला किया जा रहा है। भूखी आंखों को वे भोजन के बदले भाषण सुनाते हैं।

'पुरानी कहानी : नया पाठ' रिपोर्ताज 8 नवंबर, 1964 को 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुआ था। बाढ़ का आना 'रेणु' के लिए 'पुरानी कहानी' की तरह है लेकिन उससे प्राप्त अनुभव बल्कि यू कहें – आम आदमी से लेकर राजनीतिज्ञों तक के चेहरों को पहचानना 'नया पाठ' है। कोसी में आये बाढ़ के कारण गांव का गांव जलमग्न है, चारों तरफ जल ही जल है। उस पानी में गांव छोटे-छोटे टापू की तरह दिखते हैं। एक तरफ जल से जनमानस में हाहाकार मची हुई है और दूसरी तरफ क्षेत्र के पराजित उम्मीदवार जन सेवकजी का सपना साकार होता नजर आ रहा है। बाढ़ के लिए भगवान को दुहाई देते हैं। चीनी आक्रमण के समय वह भाषण देने और फंड वसूलने में पीछे रह गये थे लेकिन इस बार चूकते नहीं हैं। संवाददाता को पचास बाढ़ग्रस्त गांव के बदले डेढ़ सौ संख्या बताते हैं, इस उम्मीद के साथ कि – "...ज्यादा गांव बाढ़ग्रस्त होगा तो रिलीफ भी ज्यादा-ज्यादा मिलेगा, इस इलाके को। अपने क्षेत्र की भलाई के लिए मैं सबकुछ कर सकता हूँ। और झूठ क्यों ? भगवान ने चाहा तो कल तक दौ सौ गांव जलमग्न हो जा सकते हैं! "[42] अपने कार्यकर्ताओं से मिलकर बरदाहा-बांध तुड़वा डालते हैं, जिससे कस्बा रामपुर भी बाढ़ग्रस्त हो जाता है और अफवाह यह फैलाते हैं कि चूहों ने बाढ़ में बिल कर दिया था। दूसरे दिन सुबह संवाददातता अपने संवाद में भेजता है– "आज रात बरदाहा बांध टूट जाने के कारण करीब डेढ़ सौ गांव फिर डूबे...।"[43]

राजनीतिज्ञों के साथ व्यापारी और बड़े महाजन भी इस सुअवसर को खोना नहीं चाहते। 'रेणु' कहते हैं– "चीनी आक्रमण के समय वे हाथ मलकर रह गए।...यह अकाल का हल्ला चल ही रहा था कि भगवान ने बाढ़ भेज दिया। दरवाजे के पास तक आई हुई गंगा में कौन नहीं हाथ धोएगा भला। उनके गोदाम खाली हो गए,

रातोंरात बही-खाते दुरुस्त। अकाल-पीड़ितों के लिए फंड के पैसे देने की सरकारी गैर-सरकारी अपील, पर उन्होंने दिल खोलकर पैसे दिए।...अनाज ? अनाज कहाँ ? "[44] वेबाढ़ पीड़ितों को पैसा तो देते हैं पर अनाज नहीं। दो सौ बाढ़ग्रस्त गांवों में सरकार की तरफ कुछ भी मुहैया नहीं करवाया जाता है, सरकार की तरफ से बार-बार यह घोषणा की जाती है कि– "...और रिलीफ भेजा जा रहा है। चावल-आटा-तेल-कपड़ा- किरासन-तेल-माचिस-साबूदाना-चीनी से भरे दस सरकारी ट्रक रवाना हो चुके हैं।"[45] लेकिन इनमें से कुछ भी जनता के पास नहीं पहुंचता है। दो दिन के बाद छप्परों, पेड़ों और टीलों पर बैठे पानी से घिरे भूखे-प्यासे और असहाय लोगों की आंखें कुछ नावों को देखती है। उनकी आँखों में चमक आ जाती है, पर वह चमक तुरंत ही गायब हो जाती है। पहली नाव पर कांग्रेस का झंडा था और आखिरी नाव पर भी। पार्टी उस वक्त भी अपने प्रचार कार्य से पीछे नहीं हटती। भूखे लोगों को भोजन नहीं भाषण सुनाया जाता है।

'पटना-जलप्रलय' रिपोर्ताज का संबंध सन् 1975 में आये पटना की बाढ़ से है। इसका प्रकाशन 'दिनमान' साप्ताहिक के 21 सितम्बर 1975 से 20 अक्टूबर 1975 तक चार किश्तों में हुआ था। इसमें पांच अपख्यान हैं - (1) कुत्ते की आवाज (2) जो बोले सो निहाल (3) पंछी की लाश (4) कलाकारों की रिलीफ पार्टी (5) मानुष बने रहो। इसमें जल की विनाशलीला तथा ताण्डव नृत्य को दिखाया गया है। इस रिपोर्ताज में सरकारी अमले और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के असली चेहरों को खोला गया है। उनके लिए मनुष्य की यातना का कोई मोल नहीं है। वे जमकर जनता का शोषण करते हैं। एक तरफ जल की विनाशलीला तथा ताण्डव नृत्य है तो दूसरी ओर राजनीतिक अमलों की अमानवीय वृद्धि। पटना की जनता बाढ़ को भोगती और झेलती है। बाढ़ के पानी में पटना का सुहाग मिट जाता है। पानी गरीबों की किस्मत में आग लगाती है।

बाढ़ की संकट को कुत्ते अपने 'सिक्स्थ सेंस' से भांप कर रोना शुरू कर देते हैं। चारों तरफ कारुणिक आर्त्तनाद की भयानक प्रतिध्वनियां गूंज उठती हैं। कुत्ते आशंका एवं खतरे की तरफ संकेत कर रहे थे। वे मनुष्यों को होशियार करते हैं।

रात को सोने की प्रतीक्षा में या यू कहें—बाढ़ की आकुल प्रतीक्षा में लेखक की स्मृतियों में कुछ बेतरतीब दृश्यों के चलचित्र उभरते हैं। उसे 1947 के मनिहार (तब पूर्णिया अब कटिहार जिला) इलाके के बाढ़ की याद आती है, जहां वह अपने साहित्यिक गुरु सतीनाथ भादुड़ी के साथ सहायता कार्य हेतु गया था। उसके उपरांत, 1949 की महानंदा की बाढ़ से घिरे बापसी थाने के एक इलाके में लेखक पहुंचता है। वह देखता है कि कीचड़-पानी में लथपथ भूखे-प्यासे-नर-नारी अपने लोकसंस्कृति और लोकगीतों में मग्न हैं। उनके मुरझाये और सूखे चेहरों पर मुक्त खिलखिलाहट है। लेखक सोचता है— "हम रिलीफ बांटकर भी ऐसी हंसी उन्हें दे सकेंगे क्या ! "[46] मछली और चूहों को झुलसाकर खाकर किसी तरह जीवित रहने वाले मुसहर लोग उस विकट संकट के दौर में भी अपने लिए थोड़ी-सी मुस्कुराहट छीन ही लेते हैं और विनाश के इस दौर में 'रेणु' उस मुक्त मुस्कुराहटों को पहचान भी लेते हैं। तदउपरांत लेखक 1937 क सिमरवनी, शंकरपुर के बाढ़ इलाके में पहुंचता है, उसके बाद सन् 1967 के पुनपुन नदी के बाढ़ की उसे याद आती है, जिसमें पूरा राजेन्द्रनगर डूब गया था। जहां युवक युवतियां नाव पर बैठ पिकनिक मनाने निकले थे और 'ट्रांजिस्टर' पूरे 'वॉल्युम' में गा रहा था— "हवा में उड़ता जाए, मोरा लाल दुपट्टा मलमान का, हो जी हो जी।"[47] यहां अभिजात धरानों का वर्णन है, जिनके लिए बाढ़ किसी पिकनिक से कम आनंददायक नहीं। जनकवि नागार्जुन इन अभिजात घरानों को लक्ष्य कर 'बाढ़ : 67-पटना' शीर्षक कविता में लिखते हैं—

"वाह -वाह रे छोकरों की जमात !
तुमने कर दी मात
बूढ़ों की चकल्लस मान गई हार
देख के तुम्हारा नौका -विहार
कैमरा था गले में, ट्रांजिस्टर बांह में
मुखर थी मुद्राएं, मुस्कानों की छांह में

उछल रहे थे चूतड़, मटक रहे थे कूल्हे

नवाब के नाती थे, राजा के दूल्हे

लगता था कहां

कि संकट-पंकट है यहां "[48]

अठारह घंटों में सरकार की तरफ से कुछ भी राहत सामग्री नहीं पहुंचती है। रेडियों से समाचार प्रसारित होता है– "पटना की बाढ़ की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। पिछले अठारह घंटे से पटना का संपर्क देश के शेष भागों से कटा हुआ है। दूरसंचार के सभी साधन भंग हो गए हैं। गाड़ियों का आना-जाना बंद है, क्योंकि पटना जंक्शन रेलवे स्टेशन की रेल की पटरियां पानी में डूब गई हैं। आज एयर इंडिया का विमान पटना हवाई अड्डे पर नहीं उतर सका...। "[49] अठारह घंटों से पानी से घिरे हुए लोगों को सरकार की तरफ से कुछ भी मुहैया नहीं करवाया जाता। रिक्सावाले, खोमचेवाले, रद्दी कागज-शीशी-बोतल खरीदने वाले तथा भिखारी आदि सभी को भोजन मुहैया करवाते हैं, पटना के कुछ सरदार जी। इनकी सेवा भक्ति देख लेखक के मुंह से अनायास ही निकल पड़ता है– "जो बोले सो निहाल सत सिरी अकाल।"[50]

रात में कुत्तों की सामूहिक रुदन, भय और आतंक के बदले मौत का साक्षात्कार करवाती है। मौत को करीब देख वे सम्मिलित सुर में रह-रहकर रोते हैं। उसी समय अविराम वर्षा शुरू होती है। प्रकृति का उन्मत नृत्य देख लेखक को एक पंक्ति याद आती है– "तुम ही क्यों बाकी रहोगे आस्मां ! कहर बरसाकर शहर पर देख लो।"[51] खुले आसमान पर पनाह पाये लोग अविराम वर्षा में मौत से जूझ रहे थे। बाढ़ में कुछ लोगों का भोजन था- सुअर और मुर्गी की लाश, उनके लिए वह लाश नहीं बल्कि उपभोग की वस्तु थी। जीने की चाह में लोग मृत जंतुओं को खा रहे थे, और सरकार हवाई निरीक्षण से पब्लिक का उद्धार कर रही थी।

आकाशवाणी से लगातार प्रत्येक बुलेटिन में यह कहा जा रहा था कि सेना के विमान और हेलिकॉप्टरों द्वारा बाढ़ में फंसे लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया जा

रहा है तथा उन्हें पके-पकाए भोजन के पैकेट दिए जा रहे हैं। पर वास्तविक स्थिति कुछ और थी, लगातार दो दिनों से पीड़ित लोगों को इंदिरा सरकार की तरफ से कुछ भी नहीं मिलता। पटना के बाढ़ पीड़ितों को दो दिनों से सरदार और कुछ कलाकार ही जीवित रखे हुए थे।

अखबार में यह खबर है कि– "दिल्ली से इतने हजार किलोग्राम मॉडर्न रोटी आ रही है। दिल्लीवालों के दैनिक राशन में रोटी की कटौती : विदेश से 'केक' और 'चीज' भी : आगरे के पेठे ; कलकत्ते से भी रोटियां : प्राण रक्षक दवाइयां और कपड़े।"[52] पर आम जनता को सिर्फ चिउरा, भुने चने, पॉप कॉर्न तथा दालमोट मिलते हैं और शहरी कंट्राक्टर की छत पर 'ए-वन' की चिजें, ब्रेड-बटर-चीज सबकुछ गिराये जाते हैं। आम जनता सरकार की नजर में कुड़े करकट की ढ़ेर से अधिक कुछ नहीं है। वह भी भुने हुए चिउरे और चने की तरह है जो थोड़ी देर बाद नरम पर जाती है , उसकी कुरमुराहट खत्म हो जाती है। एक ओर सरकार – "गुरु-गौरव गर्जन के साथ ऊपर से करुणा और दया ...(बरसा रही थी) । दूसरी ओर स्वयंसेवी संस्थाएं चुपचाप ट्रकों, नावों और ठेलों पर खिचड़ी, चावल, रोटी, दूध, नमक, पानी, मोमबत्ती, दियासलाई, कपड़े और दवाइयां – स्लम तथा गरीब मुहल्लों में बांट रही (थी) "[53] सरकार की तरफ से लगातार झूठी सूचनाएं जनमानस में प्रसारित की जा रही थी। 'रेणु' लिखते हैं – "रोज-रोज कोई न कोई नई राहत की घोषणा होती रहती है। प्रत्येक कार्ड होल्डर को पांच किलो गेहू मुफ्तः रिक्शाचालकों को भी। पांच किलो अनाज मुफ्त में मिलेगा। सरकारी कर्मचारियों को पन्द्रह दिनों का वेतन अग्रिम मिलेगा। सिर्फ पन्द्रह ही दिनों का नहीं...पुनर्विचार के बाद फैसला लिया गया है। एक महीने का वेतन बतौर अग्रिम मिलेगा, जिसका भुगतान बाद में धीरे-धीरे किया जा सकेगा। सेना के सभी अंग राहत में लगे हुए हैं। जलसेना (नेवी) को भी सतर्क और तैयार रहने का आदेश दिया गया है। बी.एस.एफ. के जवान डाक्टरों को लेकर संक्रामक रोगों से बचने के लिए लोगों को टीके...। और एम्फिबियन (मेढ़क गाड़ी) आ रही है जो जल और थल में समान रूप से दौड़ेगी ...। "[54] लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं होता है। बाढ़ के उपरांत 'रेणु' को पूरा पटना शहर बीमार नजर आता है। उन्हीं के शब्दों में – "इसके एक बांह में हैजे की सूई का और दूसरी में टाइफाइड के टीके का घाव हो गया है। पेट से 'टेप' करके जलोदर का पानी निकाला जा रहा है। आँखें

जो कंजक्टिवाइटिस (जोय बांग्ला) से लाल हुई थीं- तरह-तरह की नकली दवाओं के प्रयोग के कारण क्षीण ज्योति हो गई हैं। कान तो एकदम चौपट ही समझिए - हियरिंग रुडसे भी कोई फायदा नहीं। बस, 'आइरन लंग्स' अर्थात रिलीफ की सांस के भरोसे अस्पताल के बेड पर पड़ा हुआ किसी तरह 'हुक-हुक' कर जी रहा है।"[55]
'रेणु' के रिपोर्ताजों में सिर्फ बाढ़ या सूखे की जानकारी नहीं भरी पड़ी है, बल्कि इसमें अपूर्व जीवन्तता है। इसमें आम जनता से लेकर राजनीतिज्ञों तक के असली मुखौटो, उनकी सोच और मानसिकता को दर्शाया गया है। 'रेणु' अपने संपूर्ण रिपोर्ताज में भारतीय यथार्थ को या यूं कहें– आजादी के बाद के बदले हुए भारतीय यथार्थ, राजनीतिक चेहरों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के असली रूप को उजागर करते हैं।

दिनमान की रपटें (सन् 1965 से 1967 तक)

'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ताज' में एक पतली रेखा का फर्क है। 'रिपोर्ताज' में कलात्मकता होती है, जबकि 'रिपोर्ट' से कलात्मकता गायब रहती है। 'रिपोर्ट' में किसी समाजिक या राजनीतिक घटनाओं को यथावत् रख दिया जाता है, इसमें कल्पना शक्ति का प्रयोग न के बराबर किया जाता है। यह साहित्य की नहीं बल्कि पत्रकारिता की वस्तु समझी जाती है और हिन्दी में आज भी साहित्य एवं पत्रकारिता में दूरी बरकरार है। लेकिन धर्मवीर भारती, अज्ञेय और निर्मल वर्मा आदि लेखकों ने इस दूरी को कम करने की कोशिश की है। इस दूरी को पाटने की कोशिश फणीश्वरनाथ 'रेणु' भी करते हैं। चकित करने वाली बात यह है कि ये चारों लेखक एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं।

'रेणु' ने 28 फरवरी, 1965 से लेकर 24 सितम्बर, 1967 तक 'अज्ञेय' के संपादन में निकलनेवाली 'दिनमान' पत्रिका मं एक रिपोर्टर की हैसियत से बिहार का प्रतिनिधित्व किया था। ये रपटें 'दिनमान' के 'चरचे और चरखे' नामक स्थायी स्तम्भ में प्रकाशित हुए थे। ये रिपोर्ट बिहार के दो वर्षों के राजनीतिक गतिविधियों के दस्तावेज हैं। इसमें कहीं राजनीतिक पार्टियों का नग्न रूप है तो कहीं समाजिक समस्याएं, तो कहीं भूख से मरते किसान। 'रेणु' अपनी रिपोर्ट में समाज की सभी अच्छाइयों एवं बुराइयों का रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। इन रिपोर्टों के माध्यम से 'रेणु' समय की नब्ज और उसकी धड़कन को पकड़ने की कोशिश करते हैं। 'रेणु' के टिप्पणियों के बारे में राजेन्द्र रंजन तिवारी का मानना है – "इन टिप्पणियों में जहां सोने की कलमवाले हिरामन के संवेदनशील मन और रसवाणी का एहसास बिखरा पड़ा है, वहीं बिहार की राजनीतिक खींचतान, उठापटक, वजीर और प्यादों का चरित्र, आंदोलनों का चारित्रिक पतन, भूख और अकाल का इतिहास भी दर्ज है।"[56] 'रेणु' के रिपोर्ट को साहित्य एवं समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता। 'रेणु' साहित्य की शोध-छात्रा डॉ. सुनीता गुप्ता का 'रेणु' के रिपोर्ट एवं टिप्पणियों के बारे में मानना है– "आजादी की भोर बेला में जब हमारा देश किसी नैनिहाल की तरह लड़खड़ा कर चलने की कोशिश कर रहा था, तो उसके चौबीस प्रांतों में से एक

प्रांत—बिहार के किसी कोने में बैठा एक साहित्यकार अपनी स्वप्न-निमीलित आँखों और सजग दृष्टि से उन घटनाओ के भीतर चलने वाली धाराओं और अंतर्धाराओं का अवलोकन कर रहा था और इस तरह वह छोटी-छोटी परछाइयों को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। इस प्रयास में साधारण जनता की आशाएँ-आकांक्षाएं भी छुपी हुई थीं। इसलिए इन रपटों में 'रेणु' को हम कभी शंकित पाते हैं, कभी निराशा...और कभी आशा एवं उल्लास से भरे हुए। बल्कि कहें कि सारे संघर्षों, टूटन के बावजूद वे आशा का दामन नहीं छोड़ पाते तो अप्युक्ति न होगी। यही कारण है कि जहां कहीं आशा का छोटा-सा अंकुर उन्हें दिखालाई पड़ जाता है तो वे अपने आपको उल्लसित होने से रोक नहीं पाते। 'रेणु' की यह रपटें साहित्य की निधि हैं या नहीं यह शंका का विषय हो सकता है, पर ये रपटें 'रेणु' की समाज की मूल धारा से जुड़े रहने का प्रमाण हैं— इसमें कोई शक नहीं।"[57] समग्रता में देखें तो 'रेणु' द्वारा लिखित रिपोर्ट काफी महत्वपूर्ण है, इससे बिहार की ही नहीं बल्कि संपूर्ण आजाद भारत की समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का आंकलन-मूल्यांकन किया जा सकता है।

'रेणु' स्वाधीनता आंदोलन के दौर के लेखक हैं। वे देश की आजादी के लिए कई बार जेल गए एवं अनगिनत बलिदानों को अपनी आंखों से देखा भी। देश की आम जनता की तरह ही 'रेणु' के लिए भी आजादी सबसे बड़ा स्वप्न है। देश आजाद हुआ, लेकिन आम जनता के लिए नहीं। वह आजाद हुआ देशी नरेशों और जमींदारों के लिए, राजनेताओं और भ्रष्टाचारियों के लिए। आजादी के कुछ ही वर्षों बाद स्वतंत्रता सेनानियों के विचार एवं चेहरे धूमिल पड़ गए। वे किसी बिते जमाने की बात हो गए। गांधी प्रतिमा में स्थापित हो गए तथा दिलों से गायब। वे स्कूल-कॉलेज में पढ़ने-पढ़ाने की वस्तु बन गए, या किसी चौरास्ते पर खड़े कर दिए गए, कौवों और कबुतरों को बीट करने के लिए।

देश की आत्मा पर जब-जब चोट हुई 'रेणु' की आत्मा कराह उठी। 'रेणु' अंतर्मुखी थी, इसलिए वे अपनी भावनाओं को लिखकर ही व्यक्त कर पाते हैं। उनके रिपोर्ट 'कम सुनो तथा समझो अधिक' वाले कहावत को चरितार्थ करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सीमा समस्याओं को लेकर लिखित **'हरी तराइयों के पीले चेहरे'** (28 मार्च,1956) और **'चिनियाँ देश के समनवाँ'** (18 अप्रैल, 1965) नामक रिपोर्ट में 'रेणु' यह बताते हैं कि आजादी के बाद तस्करी व्यापार बढ़ा है। दरअसल इसकी शुरुआत सन् 1947 ई. में ही हो गई थी, आजादी की गोद में। 'रेणु' 'मैला आंचल' में ही इस तस्करी के व्यापार का खुलासा कर देते हैं। आजादी के दिन ही बावनदास की मृत्यु इस बात की सूचक है कि गांधी के विचारों की मृत्यु हो गयी। बिहार के चम्पारण, पूर्णिया,दरभंगा आदि जिलों में बढ़ रही तस्करी की समस्य को 'रेणु' बड़े फलक पर दिखाते हैं। चम्पारण, पूर्णिय या दरभंगा कहने से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि तस्करी सिर्फ इन्हीं इलाकों में हो रही थी, बल्कि तस्करी व्यापक स्तर पर संपूर्ण भारत में हो रही थी। चूंकि 'रेणु' सिर्फ बिहार का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं इसलिए इसमें ये ही नाम आए हैं। इसका अर्थ यह भी न लगाया जाना चाहिए कि स्वतंत्रता की अग्नि में इन जिलों के लोगों ने आहुति नहीं दी। 'रेणु' के ही शब्दों में – "यह कहना गलत होगा कि चम्पारण, पूर्णिया, दरभंगा आदि जिलों के इन अंचलों में कभी 'नमक कानून' तोड़कर दल-के-दल लोग जेल नहीं गये, या कि यहां कभी विदेशी वस्त्रों की होली नहीं जली अथवा गांव-गांव में 'सुराजी स्वयंसेवकों' ने अलख जगाकर देशभक्ति के गीत नहीं गाये ; या कि व्यक्तिगत सत्याग्रह में 'न एक पाई , न एक भाई' और '42 में' भारत छोड़ो, नारे नहीं लगे। पर इन सारी बातों के बावजूद इन क्षेत्रों के अधिकांश लोग 'बिकाऊ' हो गये हैं। कारण जो भी हों, किन्तु कहा जा सकता है कि सीमावर्ती क्षेत्र में कम-से-कम तीन हजार ऐसे व्यक्ति क्रियाशील हैं जिन्हें देश को बेचने में भी कोई एतराज नहीं होगा।"[58] आजादी के 18 वर्षों के पश्चात् ही चेहरे बदल गए, विचार बदल गए और देश प्रेम तथा देशभक्ति की परिभाषाएं भी बदल गयी। इस तस्करी में सिर्फ अपढ़ या गवार लोग ही शामिल नहीं हैं, बल्कि स्कूल-कालेज में पढ़ने-लिखने वाले छात्र एवं शिक्षक सहित सरकारी महकमों के छोटे-छोटे हाकिम और कलमजीवि भी शामिल हैं। सीमा के आस-पास के गांवों में – "पचास प्रतिशत ऐसे लोग बसते हैं जो राष्ट्रीयता का अर्थ नहीं समझते अथवा –देश से बढ़कर रुपये को प्यार करते हैं।"[59] 'रेणु' कहते हैं इनके लिए चीनी कमीज और चीनी कलम ही सर्वोपरि है। यही वजह है कि इन इलाकों में कोई राजनीतिक दल नहीं पनपा। इन इलाकों में चीनी समान के विरोध में कभी नारे नहीं लगे। "...किसी राजनीतिक दल की ओर से अब तक कहीं कोई ऐसी आम या खास

सभा का आयोजन नहीं हुआ जिसमें 'चीनी सामान छूना पाप है, गद्दारी है, देशद्रोह है, गोहत्या तुल्य है, हराम है' – "यह नारा सबल-कण्ठ और बिगलित-हृदय कोई वक्ता देता और भावावेश में कोई विद्यार्थी या नागरिक अथवा कोई भी अपनी जेब से 'चीनी कलम' निकालकर तोड़ते हुए प्रायश्चित के आंसू बहाता, अथवा कोई चीनी कपड़े की कमीज फाड़कर 'भारत माता की जै' कहते हुए आग लगा देता। वरना, हर 'जलती समस्या' पर लोकगीत रच-छपाकर, गा-गाकर बेचनेवाले लोक-कवियों को अब तक प्रेरणा मिल चुकी होती और गली-गली, खेत-खलिहान, मैदानों में बच्चे-बच्चे गाते फिरते – "भइया छुरहो मति चिनियां देश के समनवां, बड़ दुसमनवां बा ...! "[60] पर आज चीनी देश के समनवां के बिना काम नहीं चल सकता। आज भारत के हर हाथ और जेब में चीन है, चीन भारत पर पूरी तरह से कब्जा जमा चुका है। आज भारत माता देश की दुर्दशा पर 'जार-बेजार' रो रही है। उसके नयनों से 'गंगा-जमुना' की धार बह रही है।

मई, 1965 में बिहार में अन्न का संकट पैदा हुआ था, लेकिन मुख्यमंत्री कृष्णबल्लभ सहाय की सरकार इंदिरागांधी की स्वागत एवं बिहार के बाग हजारीबाग में 'महावन भोज' का आनंद उठा रही थी। 'रेणु' कृष्णबल्लभ सहाय की व्यक्ति के तौर पर प्रशंसा तो करते हैं, पर मुख्यमंत्री के दायित्व के सवाल पर कई प्रश्न भी दाग देते हैं। यह 'रेणु' की तटस्थता है, उनकी आलोचना कर्म से, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट भी नहीं बच पाते। भूखे बिहारी लोगों को अन्न की बजाय भाषण खिलाया जाता है और रुपवती इंदिरागांधी के दर्शन करवाये जाते हैं। दूसरी तरफ झारखण्ड के आदिवासियों को आंदोलन के लिए उकसाया जाता है। मुख्यमंत्री सहाय अपने अध्यक्षीय भाषण में कहते हैं – "यह सच है कि अन्न का संकट है। लेकिन यह भी सच है कि किसानों की आमदनी बढ़ी है। मुनाफा अधिक लेने के लिए उन्होंने गल्ला रोक रखा है। समाज के कुछ तत्व अभाव की स्थिति पैदा कर रहे हैं।"[61] सहज बुद्धि के परिचायक मिस्टर सहायक कर्तव्य और नैतिकता के नाम पर मदद मांगते समय या भाषण देते समय यह भूल जाते हैं कि चोरबाजारी और कुकृत्यों में सबसे अधिक हाथ कांग्रेसियों का ही है। बिहार से 'अन्नपूर्णा' के अन्तर्ध्यान होने की वजह राजनीतिक एवं सरकारी कर्मचारियों की बेपरवाही एवं लापरवाही है। अप्रैल-मई, 1965 में फसल अच्छी हुई थी, इसके बावजूद भी अन्न का संकट हो गया। 'रेणु' लिखते हैं– "कहीं

एक चुटकी न चावल है न गेहूँ। लू की लपट में सारे प्रदेश की हरियाली झुलस रही है। भूख की ज्वाला में लाखों लोग जल रहे हैं। जिन लोगों को धान-चावल का भण्डार कहा जाता था – वहां के गांवों में कई सप्ताह से चूल्हें नहीं सुलग रहे हैं। कच्चे आम, कटहल, जंगली कन्द और करमी का साग भी अब मयस्कर नहीं। भूखों की बिलबिलाती टोलियां कस्बों और शहरों की ओर बढ़ रही हैं।"[62] अन्न के अभाव में लोग गांव छोड़ शहर की तरफ भाग रहे थे। बिहार के खाद्यमंत्री मुंगेरीलाल लोगों को सिर्फ अन्न के संकट का कारण बताते चलते हैं। भूखी जनता को हमदर्दी देते समय वे यह भूल जाते हैं कि भूखे पेट को हमदर्दी नहीं अन्न चाहिए। उन्हें भाषण, सत्संग और भजन नहीं भोजन चाहिए। भूख से मर रहे लोगों को यह ज्ञात है कि – "हाल ही में हजारीबाग में 'खा-पीकर अघाये' हुए लोगों ने 'विशाल अन्नध्वंस यज्ञ' सम्पन्न किया है।"[63] 'खा-पीकर अघाये' हुए लोग कोई और नहीं बल्कि राजनीतिक पार्टी वाले हैं। हमारे प्रतिनिधि।

बिहार में अन्न का संकट है, लोग भूख से मर रहे हैं, लेकिन नेपाल तथा अन्य सीमावर्ती राज्यों में चोरी-छिपे चावल भेजा जा रहा है। बड़े किसानों द्वारा 'गल्ला' रोका जा रहा है। ये सभी चीजें – "बिहार को विप्लव के द्वार पर ले"[64] जाती है। 'रेणु' कहते हैं– "यह 'विपत्ति' बनावटी हो या असली, भूख नकली नहीं।"[65] पर – "बिहार की जनता को अब भी भरोसा है कि कृष्णबल्लभ सहाय भूखों को अन्न ही देंगे - लाठी- गोली नहीं।"[66]

अन्न की संकट से बचने के लिए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री देशवासियों को 'अथ अन्नपूर्णा व्रतम्' (12 नवम्बर, 1965) करने की सलाह देते हैं। उनका आग्रह है कि लोग सप्ताह में एक शाम निराहार रहें – "इस व्रत के प्रभाव से 'अन्नपूर्णा' प्रसन्न होंगी और हम 'परान्नभोजी' नहीं रहेंगे।"[67] राजनीतिक कार्यकत्ताओं के लिए यह व्रत सिर्फ मनोरंजन का साधन है, कोई 'मंगलमय' के लिए मंगलवार की शाम चुनता है तो कोई, शनि की 'वक्रदृष्टि' से बचने के लिए शनिवार की सुबह। शायद उन्हें ज्ञात नहीं कि आजाद भारत की आजाद जनता की सिर्फ एक शाम ही नहीं बल्कि कई शामें बिना भोजन की गुजरती है। वह ऐसे व्रतों का पालन वर्षों से चुपचाप करती आ रही है।

आजादी से पहले हमारे स्वतंत्रता-सेनानी स्वराज पाने के लिए 'प्रलयंकारी विस्फोट' का इस्तेमाल किया करते थे। पर आजादी के बाद कुछ स्वार्थी राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता अपने हित के लिए अपने ही भाई बंधुओं को उड़ाने के लिए – **'प्रलयंकारी विस्फोट'** करते हैं। 6 जून, 1965 को प्रकाशित 'प्रलयंकारी विस्फोट' शीर्षक रिपोर्ट में 'रेणु' धोरी कोयला खान में , एक भयानक विस्फोट में, ढ़ाई सौ से ऊपर मजदूरों के मौत का कारण दुर्घटना नहीं बल्कि साजिश बताते हैं। यह भी आजाद भारत की एक सच्चाई है।

भारत और पाकिस्तान के संबंधों से संबंधित 'रेणु' के दो रिपोर्ट मिलते हैं - पहला- **'बन्ध और निर्बन्ध'** (27 अगस्त, 1965) और दूसरा – **'एक पाकशाला में एक पाक-नापाक बूचड़'** (5 नवम्बर, 1965)। इन रिपोर्टों में 'रेणु' हिन्दू-मुसलमान के आपसी संबंधों की पड़ताल करते हैं। मुख्यमंत्री कृष्णबल्लभ सहाय के समय में, जनता अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए– "रेल की पटरियां उखाड़कर, पेट्रोल और डीजल की टंकियों में आग लगाकर, टेलिफोन के तार काटकर डाकघरों पर हमला बोलकर और सरकारी इमारतों से राष्ट्रीय ध्वज उतारकर"[68] विरोध प्रदर्शित करती है। इस आंदोलन के कारण स्पष्ट करते हुए 'रेणु' कहते हैं– "आंदोलन का स्पष्ट कारण कच्छ-सीमा समझौते का विरोध, अनाज की कमी और चोर-बाजारी तथा छात्रों की बढ़ी हुई फीस भले ही रहा हो और छात्रों तथा नेताओं ने भी मात्र विरोध के इरादे से ऐसा किया हो लेकिन जनभावना को उस ओर से हटाकर अपनी मुट्ठी में कर लेने तथा परिस्थिति को अराजकता की सीमा तक पहुंचा देने का बृहत्तर श्रेय वामपंथियों और पाकपरस्तों को था।"[69] आंदोलन छात्र एवं जनता की हाथों से निकलकर कुछ गलत लोगों के हाथों में आ गया था। छात्रों का उद्देश्य प्रदेश में अशांति फैलाना न था, पर कुछ सांप्रदायिक ताकतों ने भयानक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत इसे गलत दिशा प्रदान की। 'रेणु' के ही शब्दों में – "जांच से भी ऐसे ही तथ्य सामने आये हैं इसके पीछे पाकपरस्तों और वामपंथियों का ही हाथ रहा है।"[70] पाकिस्तान खुलेआम भारत के भाग्य से खेल रहा था, और इस खेल में सहायक बन रहे थे हमारे ही लोग। गलत मुस्लिम ताकतें ही मुसलमानों की सभाओं और सम्मेलनों को सफल नहीं होने देती। वे हमेशा एक भीड़ बनकर उसका विरोध करती हैं, और भीड़ की कोई जाति नहीं होती। कुछ सांप्रदायिक ताकतें हिन्दू-मुसलमान के नाम पर मुस्लिम-सम्मेलनों को ध्वस्त

करती आई है। उर्दू की आड़ में वे देश की अखंडता को खंडित करने की कोशिश करते आए हैं। कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी मुसलमानों के सम्मेलन में प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री अब्दुल कय्यूम अंसारी ने कहा – "उन सभी पाकिस्तानी घोंसलों को नष्ट करना होगा जिनका विस्तार बिहार - मंत्रीमण्डल तक है।" एक पाक-समर्थक ने लिखित प्रश्न किया, 'तुम पाकिस्तान की शिकायत करते हो, इसलिए खुदा ने मोटर दुर्घटना कराकर तुम्हारा हाथ तुड़वा दिया।' अंसारी ने उत्तर देते हुए कहा – "यह खुदा की नारागजी का ही सबूत है कि पाकिस्तान का निर्माण करानेवाले जिन्ना के मुंह में सांघातिक कैंसर हो गया था।" उन्होंने जोर देकर यह बात दुहरायी कि प्रदेश में सांप्रदायिक तत्व तेजी से सक्रिय हो रहे हैं और मुसलमानों को राष्ट्र के प्रति वफादार नहीं होने दे रहे हैं। इन्हें तत्काल खत्म करने का प्रयत्न करना चाहिए।"[71] उस समय कुछ कट्टर खद्दरधारी कांग्रेस में विद्यमान थे, जो राष्ट्र का हित न सोचकर राष्ट्रवादी मुसलमानों को बहलाने और बरगलाने का काम कर हे थे, और आज भी कर रहे हैं। खद्दर पहनकर न सही कोट-पैंट और हैट पहनकर ही सही।

राष्ट्र का हित न सोचनेवाला, गलत ताकतों के बहकावे में आ जाने वाला पटना निवासी खिजर ध्यात कादरी – "एन.सी.सी.(राष्ट्रीय सैन्य शिक्षा), नैवेल विंग (नौसेना-अंग) के 600 सैन्य विद्यार्थियों के चेहरों पर (हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई) के खाने में जहर मिला देता है। वह 'कोकनद' जैसे खिले 600 सुशिक्षित 'नैनिहाल' को मार देना चाहता है। वह उन्हें विष की ज्वाला में झुलसा देना चाहता है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय से सूचना आयी है कि वह पाकिस्तानी है, पर वह है पटनिया ही, पटना में ही पला-बढ़ा है। खिजर की तरह न जाने कितने मुसलमान अपने लक्ष्य से भटक कर अपने ही भाई -बंधुओं के दुश्मन बने हुए हैं।

'भनहि् विनोबा, सुनहु सुजान' (3 दिसम्बर, 1965) नामक रिपोर्ट में 'रेणु' विनोबा भावे के विचारों को व्यक्त करते हैं। 'रेणु' का मन गांवों में रमता था, उन्हें गांव से प्यार था। खेत-खलिहान की महक उन्हें आकर्षित करती थी। 'रेणु' हमेशा ग्रामीण जीवन के कल्याण से संबंधित योजनाओं के साथ रहे। इसलिए विनोबा का ग्राम-दान, भू-दान आंदोलन उन्हें प्रिय है। विनोबा भावे का मानना है – "राजनैतिक दलों ने गांवों को सुधारने के बदले शांत ग्रामीण वातावरण को कलुषित किया है। हर आदमी को दलबंदी के दलदल में फंसाकर, 'जातिवाद' की संकीर्ण भावनाओं को

भड़काकर चुनाव जीते जाते हैं। हर दल का नेता अपने-मुंह अपनी तारीफ करता है और दूसरे दलों के नेताओं पर कीचड़ उछालता है। और, झूठे वायदे करता है...। "[72] स्वतंत्र भारत के 'परतंत्र' गांवों की दुर्दशा के लिए राजनैतिक पार्टियां ही जिम्मेदार हैं। आजाद भारत के ग्राम पंचायत का पर्दाफाश करते हुए आचार्य कहते हैं – "इन पंचायतों ने गांव को तोड़ा है, बेरहमी से। हां, ईर्ष्या-डाह-वैर-विरोध आदि का राष्ट्रीयकरण और शोषण का विकेन्द्रीकरण करने में ये अवश्य सफल हुई हैं।"[73]

ग्राम-विकास के नाम पर होने वाले स्वार्थ एवं राजनीति का नंगा नृत्य 'रेणु' अपनी आंखों से देख एवं समझ रहे थे। ग्रामीण राजनीति के असली स्वरूप का पर्दाफाश करते हुए 'रेणु' लिखते हैं – "गांवों पर आज राजनीतिक दलों के बांके 'लठैतों' का राज है। सैकड़ों दरबारों में दिन-रात झुक-झुककर सलाम करते गांव के लोगों की रीढ़ की हड्डियां झुक गयी हैं। ऐसे में सिर तानकर अन्याय के विरोध में आवाज उठानेवाले को अपनी गर्दन हथेली पर लेकर निकलना पड़ता है।"[74] 'रेणु' आगे वीभत्स राजनीति के चेहरों को थोड़ा और खोलते हैं – "गांव वापस चलो के नारे में विश्वास करनेवाले, आंसू से भीगी हुई धरती पर लार की खेती करने का सपना देखनेवाले किसी ग्रामीण को शहर में बसने के लिए 'दो गज जमीं' ढूंढ़ते देखकर हमें आज अचरज नहीं होता। हम जानते हैं कि उसकी कहानी कुछ ऐसी ही होगी – "फलाने बाबू ने चुनाव के समय आकर वोट मांगा, मैंने नहीं दिया। तटस्थ रहा और फलाने बाबू हार गये। धरने के बाद खिसियाकर खम्भा नोचने लगे ...।"

और, इनका खम्भा नोचना ? साल-भर मेहनत करके लगायी गयी खेती एक ही रात में पार ! मवेशी की चोरी, फसल की चोरी, फलों की चोरी और सीनाजोरी। चूंकि कोतवालियों के कोतवाल के स्वामी 'फलाने बाबू' हैं – "इसलिए खून कर देने पर भी कहीं चर्चा नहीं होती।"[75] यही है आजाद भारत के गांवों की असली आजादी। गांधी ने आजाद भारत का विकास गांवों से चाहा था, पर आजादी के बाद भी भारतीय गांव परतंत्र ही रहे। अंग्रेजों और जमींदारों की जगह राजनैतिक पार्टियों ने उस पर कब्जा जमाया। लोग गांव छोड़ शहर की ओर भागने लगे, अपनों से बिछुड़ने लगे। ये आजाद भारत के आजाद गांवों का असली चेहरा है जो आज और भी अधिक वीभत्स हो चला है। आज 'तटस्थ व्यक्ति' को कुछ भी लिखने और बोलने से पहले – "कलम

में रोशनाई भरने से पहले रिवाल्वर में गोलियां"[76] भरनी पड़ती हैं। पता नहीं कब उसे अपनी तटस्थता की कीमत चुकानी पड़ जाए।

आजाद भारत की पुलिस, कोतवाल गांवों की रक्षा करने की बजाय गांववालों के बहु-बेटियों की इज्जत लूट रहे थे। उन्हें सरेआम बेइज्जत कर रहे थे। 'रेणु' लिखते हैं– "सहरसा के सौर बाजार थाना में पामा गांव की एक महिला पर रात के वक्त थाना के सहायक दरोगा ने बलात्कार करने की चेष्टा की। गांव के लोगों ने दरोगा साहब को रंगे हाथों पकड़ा और संभवतः 'मरम्मत' भी की। दूसरे दिन सशस्त्र पुलिस के सिपाहियों को लेकर एक मजिस्ट्रेट साहब आये और सारे गांव को घेरकर कई घंटों तक बुरी तरह लूट-पीट मचायी गयी। औरतों के साथ दुर्व्यवहार भी किया गया।"[77] भारतीय पुलिस और गोरे सिपाहियों में सिर्फ रंग का ही फर्क है। भारतीयों के साथ दोनों का व्यवहार एक जैसा ही है।

आजाद भारत में बंगला-साहित्य की 'भूखी-पीढ़ी' के जन्मदात और नेता कवि मलय राय चौधरी को कलकत्ता के बैंकसाल कोर्ट नयी शैली की कविता लिखने के कारण दंडित करती है। उनके द्वारा लिखित कविता को अश्लील कहा गया, जबकि बंगला लेखकों एवं कवियों का मानना है कि यह – "कविता तनिक भी अश्लील नहीं बल्कि कला का एक नमूना है।"[78] पर आजाद भारत में कवियों एवं लेखकों की बात नहीं सुनी जाती, उन्हें दो कौड़ी का आदमी समझा जाता है।

सन् 1966 के अंतिम दिनों में बिहार में भीषण सूखा और अकाल पड़ा था। राजनीतिक दृष्टि से यह समय उथल-पुथल का था। मुख्यमंत्री सहाय का अंतिम समय चल रहा था और चुनाव नजदीक था। सूखा और अकाल के चलते हजारों-हजार गांवो के लोग दाना-पानी के बिना भूख से मर रहे थे और हमारे राजनीतिक कार्यकर्त्ता, जनता के सेवक चुनावी दंगल में फंसे हुए थे। बिहार की जनता अभी अकाल से जूझ ही रही थी कि जनवरी 1967 के पहले सप्ताह में ही दंगा शुरू हो जाता है और 'खादी भवन' जला दिया जाता है। **'चुनावी-लीला बिहारी तर्ज'** शीर्षक रिपोर्ट में 'रेणु' लिखते हैं – "...1930-31 में विलायती कपड़े की गांठों में और 'यूनियन जैक' में आग लगाकर लोग 'देशभक्ति' का परिचय देते थे। 1967 में खादी, तिरंगा झंडा और गांधी-टोपी में आग लगाकर।"[79] यह सन् 1967 की 'देश-भक्ति' है !

राजनीतिक दलों का चुनाव-लीला आगजनी, लूट-पाट और करोड़ों रुपये की संपत्ति जलाकर शुरू होता है। "करोड़ों रुपये से भी अधिक की यह क्षति, ऐसे दुर्दिन में, जब कि जे.पी. चार आने, आठ आने पैसे चंदा उगाह रहे हैं।..."[80]

'रेणु' अपने रिपोर्ट तथा टिप्पणियों में आजाद भारत के राजनीति का नग्न रूप उपस्थित करते हैं। सन् 1965 से लेकर 1967 ई. तक का यह रिपोर्ट बिहार के राजनीतिक गतिविधियों का दस्तावेज है। तैंतीस रिपोर्ट में से अधिकतर रिपोर्ट राजनीतिक उठा-पटक से संबंधित हैं। इसकी वजह यह है कि 'रेणु' का राजनीतिक जीवन उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर भी हावी रहा। वे साहित्य में भी राजनीतिज्ञ बने रहे।

साक्षात्कार

'साक्षात्कार' अंग्रेजी शब्द इंटरव्यू का हिन्दी रूपान्तर है। हिन्दी में इसके लिए 'भेंटवर्ता' शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है। आज विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में 'इंटरव्यू' एक विशेष विधा बनकर उभरी है। साक्षात्कार में कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों के विभूतियों से मिलकर महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रश्न किया जाता है। साक्षात्कार दो या दो से अधिक व्यक्तियों में भी होता है।

संभवतः बनारसीदास चतुर्वेदी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने 'रत्नाकरजी से बातचीत' (विशाल भारत, सितम्बर, 1931 ई.)और 'प्रेमचंदजी के साथ दो दिन' (विशाल भारत, जनवरी 1932 ई.) प्रकाशित करके इस विधा की शुरुआत की थी। बेनीमाधव शर्मा की 'कविदर्शन' इस विधा की प्रथम स्वतंत्र कृति मानी गयी है। 'साक्षात्कार' के विकास में पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है। 'साक्षात्कार' के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का आकलन करते हुए रचनाकार की मनःस्थिति को जाना जा सकता है।

'रेणु' के कुल 17 'साक्षात्कार' हैं। इनके प्रश्नकर्त्ता हैं– (सुश्री) गौरा, एम.ए.(स्वयं 'रेणु'), ललितांशुमयी, सुवास कुमार, रॉबिन शॉ पुष्प, रघुवीर सहाय, मधुकर सिंह, जुगनू शारदेय, भूपेन्द्र अबोध, डॉ. लोठार लुट्से, त्रिलोक दीप, सूर्य नारायण चौधरी, यादवेन्द्र पाण्डेय, समीर राय चौधरी, विश्वनाथ और श्रीमती गीता पुष्प सहित विभिन्न पाठक। इन 'साक्षात्कारों' में हमें 'रेणु' के विविध आयामों के दर्शन होते हैं। ये 'साक्षात्कार' 'रेणु' के विचारों को समझने में सहायक बनते हैं।

'रेणु' अपने 'साक्षात्कारों' में सहज, उनमुक्त और बेबाक दिखाई देते हैं। उनके 'साक्षात्कारों' को पढ़ना उनसे संवाद करने की तरह है। 'रेणु' के साक्षात्कारों के संबंध में भारत यायावर का मानना है कि – " 'रेणु' के साक्षात्कारों को – पढ़ना – उनसे मिलने की तरह है। वह मूलतः एक किसान हैं – ठेठ भारतीय किसान ! 'रेणु' का पूरे हिन्दुस्तान के जन-जीवन को देखना – उसी दृष्टि से है। एक रागभरी कृषक-दृष्टि ! मध्यकालीन संत-कवियों को पढ़ने पर उनकी छवि बनती है 'रेणु' से

साक्षात्कार करते हुए वही छवि ! "[81] बनती है। 'रेणु' संत ही हैं क्योंकि उनके लिए दुनिया की कोई भी वस्तु त्याज्य नहीं है। वह सभी को उसके सच्चे और स्वाभाविक रूप तथा उसकी सभी अच्छाइयों, बुराइयों और कुरितियों के साथ स्वीकार करते हैं।

आजादी के बाद भारतीय गांवों का विघटन शुरू हुआ। किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति गांवों में नहीं हो रही थी, इसलिए नयी पीढ़ी रोजी-रोटी की तलाश में शहर की तरफ जाती है। आजादी के बाद शहरों की संख्या बढ़ी। शहरी मूल्यों में काफी बदलाव आया। **'मिलिए फणीश्वरनाथ 'रेणु' और उनके परिदृश्य से'** (ज्ञानोदय, अक्टूबर, 1968) नामक साक्षात्कार में रेणु कवि-कथाकार सुवास कुमार को गंवई और शहरी मनुष्य के बीच के टूटते संबंध एवं उनके व्यक्तित्व के टूटन के साथ ही उनकी मान्यताएं और मूल्यों के विघटन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं – "क्या शहर, क्य देहात –हर चीजें, सारी चीजें अवमूल्यित हुई हैं। देखिए, आपने जब चर्चा छेड़ ही दी तो मैं 'परती : परिकथा' की ओर आपका ध्यान ले जाना चाहूंगा। उसमें व्यक्ति के टूटते हुए सामाजिक संबंधों पर विचार किया गया था। सर्वे के समय परिवार टूटा। जैसे लड्डू से बुंदिया झरता है न, उसी तरह झर-झर झरते हुए लोग-समाज से और परिवार से। मैंने लिखा था– कोई घर साबूत नहीं, क्या गरीब, क्या अमीर। अब परिवार का एक प्राणी दूसरे को संदेहभरी निगाहों से देख रहा है। एक-एक आदमी अपने को एक किला बना रहा है। सभी कछुए हुए जा रहे हैं।"[82] आगे कहते हैं – "भाई-भाई में बनती नहीं, ठनती जरूर है; क्योंकि कहावत बन गई है... "भाय-भैयारी भैसी की सींघ। जखने जनमल तखने भिन्न।" मान लिजिए किसी परिवार में चार भाई हैं। परिवार में इमली का एक ही पेड़ है। आपस में लड़-झगड़कर चारों भाई एक-एक इमली भी नहीं तोड़ पाते हैं, किन्तु दूसरे आदमी इस फूट से फायदा उठाकर वह इमली तोड़ ले जाते हैं।"[83] आजादी के बाद हर परिवार में दरार है – "कहीं वह स्पष्ट परिलक्षित होता है तो कहीं उसे मिट्टी से लेप दिया गया है लेकिन दरार तो है।"[84] आजादी के बाद गांवों का विकास न होने की वजह से ही गंवई लोगों को शहर ने आकर्षित किया। गांव का– "मजदूर-वर्ग शहर के बारे में सोचता है कि वहां साला 'रक्शा डिलैवरी' भी करेंगे तो 300 रु. महीना "· ...शहर में क्या नहीं है ? पैसा का तमाशा है– " 'खोलो पैसा' देखो तमाशा।" गांव में पैसा खोलकर भी तमाशा देखा जा सकता है ? इसलिए तो मुर्गी गांव में बोलती है, मगर अण्डा शहर में

बिकता है।"[85] आजादी के बाद गंवई लोगों को शहरी वस्तुओं एवं 'बाबू' शब्द ने आकर्षित किया है।

आजादी के बाद भूमिहीनों को जमीन देने की बात थी। उन्हें फसल की कीमत के साथ नकद क्षतिपूर्ति और तीन साल तक सरकारी सहायता मिलने की बात थी। सरकार की इस घोषणा से लोगों के मन में पड़ी हुई परती की पपड़ी हट गयी थी, जनता स्वर्णिम सुख की कल्पना कर रही थी। पर आजादी के एक दशक बाद ही उनकी कल्पना की भूमि अन्याय से रौंद दी गयी। लेखक तथा जनता का भरोसा गलत साबित हुआ। रघुवीर सहाय को दिए गए साक्षात्कार **'टूटता विश्वास'** (दिनमान, 3 मई, 1970) में 'रेणु' कहते हैं – "मुझे विश्वास था कि जब कोसी योजना सफल होगी तो जिन्हें अभी जमीन नहीं मिली है उन्हें आगे चलकर मिल जाएगी लेकिन वैसा नहीं हुआ". ...अभी भी 100 पीछे 75 लोग ऐसे हैं जिनके पास कोई भूमि नहीं है,...इसके लिए कुछ होगा, ऐसा मुझे सचमुच आशा थी; पर किसी ने कुछ किया नहीं।"[86] वायदा और विश्वास टूटने से लोगों का कानून पर से भरोसा उठ गया। और लोगों ने आतंक का रास्ता अख्तियार किया, जिसे 'नक्सलपंथी' नाम दिया गया। हमारे राजनीतिक दलों एवं सामाजिक कार्यकत्ताओं ने भूमिहीनों के साथ धोखा किया।

आजादी के बाद भारत में दो जातियां विकसित हुई, एक-अमीर और दूसरी गरीब। अमीर और अमीर होते गए और गरीब उन्हें टुकुर-टुकुर देखता रहा। स्वतंत्र भारत में – "किसी भी पार्टी में वह दमखम नहीं है कि जमीन के सवाल को लेकर लड़े ...। "[87] सब अपने स्वार्थ को सिद्ध करने में लगे हुए हैं। बड़े-बड़े किसान आज भी छोटे तथा मझोले किसानों का शोषण कर रहे हैं, उनके बीच आज भी सामाजिक असमनता और दुर्व्यवहार बरकरार है। आजाद भारत की सबसे बड़ी समस्या भूमि समस्या है। आजादी के बाद ''देश बहुत तेजी से बदल रहा है...दल-बदल, भूमि-हड़प, कुर्सी-हड़प के बाद देखिए और क्या-क्या होता है।"[88] 'रेणु' का मानना है कि नक्सलवाद भूमि लेने का सही साधन नहीं है– " नक्सलवाद तो एक प्रतीक है, एक गुस्सा है। इनके पास कोई नया समाधान नहीं है। जमीन के लिए सही लड़ाई अभी बाकी है।"[89] सही मायने में नक्सलवाद किसी समस्या का समाधान नहीं है, बल्कि खुद एक समस्या है, जो आजाद भारत की राजनीतिज्ञों की देन है।

जुगनू शारदेय को दिए गए साक्षात्कार **"दुख-सुख में साझेदारी के लिए"** (दिनमान, 27 जनवरी, 1972) में 'रेणु' यह बताते हैं कि आजादी की छांव में जिस सांप्रदायिकता ने जन्म लिया वह धीरे-धीरे, छोटे-छोटे गांवों में भी फैलती गयी। सन् 1970 के बाद की राजनीति ने हिन्दू-मुसलमान के संबंधों को कलुषित किया है। आजादी के बाद की–"राजनीतिक (?) चेतना ने इस सौहार्द्रपूर्ण माहौल को ऐसा कलुषित कर दिया कि पिछले साल वे आपस मं लड़ पड़े। लड़ पड़े नहीं, बल्कि यों कहिए कि उन राजनीतिक तत्वों द्वारा लड़ा दिए गए जो ग्राम पंचायत से लेकर विधान सभा और लोकसभा के चुनावों में अल्प-संख्यक और बहु-संख्यक वर्ग को कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करते हैं।"[90]

आजादी के बाद भूख और अकाल अपने चरम सीमा तक बढ़ी। 'रेणु' कहते हैं –"पिछले ही साल सितम्बर-अक्टूबर महीने में अखबारों में एक खबर पढ़ने को मिली मेरे ही गांव के दो मुसहर भूख से मर गये। समाचार में यह भी था कि सरकरी डॉक्टर ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इसे भूख से हुई मौत करार दिया है तथा सरकार की ओर से इन्हें हैजा से हुई मृत्यु घोषित किया गया है।"[91] सरकार सच्चाई को झूठ का जामा पहना देती है।

आजाद भारत में पढ़े-लिखे युवक बेकार घुम रहे हैं। सारी डिग्रियों के बावजूद उन्हें नौकरी नहीं मिल रही है, क्योंकि उनके पास या उनके साथ कोई नेता या मंत्री नहीं है। वे पढ़ाई में 'गोल्ड मेडलिस्ट' हैं, चतुराई या चापलूसी में नहीं। ऐसे ही एक प्रसंग का खुलासा 'रेणु' जुगनू शारदेय से करते हैं –"पिछले ही साल की बात है कि मेरे गांव का एक नौजवान मेरे डेरे पर आया और 'सर्चलाइट' के मुख पृष्ठ की करतनो को मेरे सामने बिखेर कर खड़ा हो गया। वह प्रतिभावान नौजवान पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक सर्वप्रथम आता रहा है। गोल्ड मेडल भी प्राप्त किया है। गत दो वर्षों से बार-बार इंटरव्यू होता है, कई बार चुना गया पर नौकरी मिल जाती है किसी दूसरे या तीसरे को।"[92] कवि-कथाकार उदय प्रकाश की चर्चित कहानी 'मोहनदास' भी कुछ ऐसी ही है। मोहनदास को भी आजीवन नौकरी नहीं मिलती है। यहां तक कि उसके नाम पर दूसरा कोई नौकरी भी कर लेता है। आजादी की इस सच्चाई को 'रेणु' सहित उदय प्रकाश भी उठाते हैं।

आजाद भारत की इन्हीं सब समस्याओं से जूझने के लिए 'रेणु' ने चुनाव लड़ा था। वह आजाद भारत की जनता को यह बताना चाहते थे कि लाठी, पैसा और जाति की ताकत के बिना भी चुनाव जीता जा सकता है, लेकिन यह आजाद भारत की सबसे बड़ी सच्चाई है जिसे 'रेणु' झुठलाना चाहते थे, पर वह उसे झुठला ना सके। समाज की इन विकृतियों ने उन्हें हरा दिया। वह सांप्रदायिकता की जहर को मिटाना चाहते थे पर खुद ही उसके शिकार हो गये। वैलेट की जगह बुलेट की जीत हुई।

आजाद भारत के बदले हुए यथार्थ को समझने में 'रेणु' के साक्षात्कार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। 'रेणु' इन साक्षात्कारों में आजादी की सच्चाई को परत-दर-परत खोलते हैं।

संदभ-सूची

1 माचवे प्रभाकर, हिन्दी साहित्य की कहानी, ओरिएण्टल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1956 ई., पृष्ठ सं.-74

2 तिवारी, डॉ. सियाराम (संपादक), रेणु : कर्तृत्व एवं कृतियां, नवनीता प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, सन् 1983 ई., पृष्ठ सं.-277

3 आलोचना (त्रैमासिक), संपादक- शिवदान सिंह चौहान, लेख-हिन्दी में रेखाचित्र और रिपोर्ताज- डॉ. विश्यवम्भरनाथ उपाध्याय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक-36, अप्रैल 1966, पृष्ठ सं.-83

4 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-85

5 यायावर, भारत (संपादक), रेणु रचनावली, भाग-4, संपादकीय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-9-10

6 उपरोक्त, पृष्ठ स0-9-10

7 'रेणु', फणीश्वरनाथ, ऋणजल-धनजल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, पहला पेपरबैक संस्करण, 2005 ई., पृष्ठ सं.-11

8 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-13

9 रेणु रचनावली, भाग-4, भारत, यायावर (संपादक), संपादकीय, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-35

10 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-37

11 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-38

12 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-39

13 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-39

14 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-40

15 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-41

16 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-42

17 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-42

18 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-43

19 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-43

20 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-44

21 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-44

22 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-47

23 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-49

24 उपरोक्त, पृष्ठ सं.49

25 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-64

26 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-66

27 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-54

28 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-51

29 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-53

30 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-52

31 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-53

32 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-64

33 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-64

34 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-41

35 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-158

36 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-158

37 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-158

38 नागार्जुन रचनावली, भाग-1, संपादक-शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-पटना, पहला संस्करण, सन् 2003 ई., पृष्ठ स0-266

39 रेणु रचनावली, भाग-4, संपादक- भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-170

40 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-173

41 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-183

42 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-131

43 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-131

44 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-131

45 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-132

46 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-256

47 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-256-257

48 नागार्जुन रचनावली, भाग-1, संपादक-शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-पटना, पहला संस्करण, सन् 2003 ई., पृष्ठ सं.-443

49 रेणु रचनावली, भाग-4, संपादक- भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ स0-

263

50 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-365

51 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-281

52 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-284

53 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-290

54 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-290

55 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-294

56 यायावर, भारत (संपादक), फणीवरनाथ रेणु अर्थात मृदंगिये का मर्म, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1991 ई., पृष्ठ सं.-273

57 गुप्ता, डॉ. सुनीता, रेणु का कथेतर साहित्य, अनुपम प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-256

58 'रेणु', रेणु रचनावली, भाग-4, संपादक- भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-308

59 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-304

60 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-309

61 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-320-321

62 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-323

63 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-323

64 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-323

65 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-323

66 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-324

67 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-333

68 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-324

69 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-324

70 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-325

71 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-325-326

72 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-336

73 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-336

74 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-336

75 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-336

76 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-340

77 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-340

78 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-347

79 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-353

80 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-354

81 **'रेणु'**, फणीश्वरनाथ, रेणु रचनावली, भाग-4, संपादक- भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-इलाहाबाद-पटना, तीसरा संस्करण, सन् 2007 ई., पृष्ठ सं.-15-16

82 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-399

83 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-399-400

84 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-400

85 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-400

86 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-413

87 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-415

88 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-422

89 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-424

90 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-432

91 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-426

92 उपरोक्त, पृष्ठ सं.-427